International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 4; July 2018; Page No. 44-47

स्वामी दयानन्द सरस्वती का शिक्षा दर्शन : सत्यार्थ प्रकाश के विशेष सन्दर्भ में

वर्षा गौतम [1], डॉ० डी०एस० सिंह बघेल [2]

[1] शोधार्थी शिक्षा, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत।

[2] आचार्य एवं विभागाध्यक्ष शिक्षा, लाइफ लांग लर्निंग विभाग अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) भारत।

सारांश

प्रस्तुत शोध स्वामी दयानन्द सरस्वती का शिक्षा दर्शन : सत्यार्थ प्रकाश के विशेष सन्दर्भ में आधारित है। महर्षि दयानन्द ने उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में अपना कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश रचकर धार्मिक जगत में एक क्रांति कर दी। यह ग्रन्थ वैचारिक क्रान्ति का एक शंखनाद है। इस ग्रन्थ का जनसाधारण पर और विचारशील दोनों प्रकार के लोगों पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। प्राचीन शिक्षा पद्धति के अनुसार शिक्षा पूर्ण होने पर गुरू दक्षिणा का प्रावधान होता है परन्तु दयानंद जी के व्यास गुरू जी को देने के लिए कुछ भी नहीं था वे जानते थे कि गुरू जी को लौंग बहुत पसंद थी, तो वो दक्षिणा स्वरूप गुरू जी के पास आधा सेर लौंग लेकर पहुंचे, परन्तु गुरू जी ने अपने सुयोग्य शिष्य से दक्षिणा स्वरूप कुछ और देने को कहा– ''देश का उपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मतमान्तरों की अविधा को हटाओ और वैदिक धर्म का प्रचार करो।''

अपने गुरू के कथनानुसार स्वीकार कर दयानंद जी ने गुरू जी के आश्रम से विदा ली और अपना सम्पूर्ण जीवन उस वचन को निभाने में लगा दिया, जो उन्होंने अपने गुरू जी को दिया था और जो उन्होंने अपने गुरू जी से सीखा था।

मूल शब्द : स्वामी दयानन्द सरस्वती, शिक्षा दर्शन, सत्यार्थ प्रकाश, शास्त्रार्थ।

प्रस्तावना

स्वामी दयानन्द का जन्म उस काल में हुआ, जब सामाजिक जीवन में अंधविश्वास और कुरीतियाँ व्याप्त थी। भारतीय अपनी प्राचीन मर्यादा और आदर्श धर्म और दर्शन संस्कृति और सभ्यता को भूल चुके थे। समाज में परस्पर भेद–भाव, ऊँच–नीच का महौल था। दलित और विधवाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। विधवाओं को अपनी पवित्रता का प्रमाण अपने पति की चिता के साथ जलकर देना होता था। दूसरी ओर शिक्षा से विमुख होकर पर्दे में रहना पड़ता था आदि कई ऐसे भयानक रोग समाज में व्याप्त थे, जो समाज के सम्पूर्ण ढ़ाँचे को खोखला कर सकता था।

हर युग को एक नई दिशा देने और उसमें व्याप्त अंधविश्वासों और कुरीतियों से छुटकारा दिलाने, समाज में नई रोशनी लाने के लिए महापुरूषों की आवश्यकता होती है, जो इस कार्य के लिए अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देते हैं। तभी आम जनता उनके विचारों और बातों को मानकर उनका अनुशरण कर लेती है और वो युग–प्रवर्तक कहला जाते हैं, जो इस लड़ाई का विगुल बजाते हैं।

आर्य समाज एवं वैदिक धर्म के संस्थापक महर्षि दयानन्द ऐसे ही युग–प्रवर्तक पुरूष थे। महर्षि दयानन्द ने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को गहराई से अध्ययन किया और उसके पतन के कारणों को खोजकर उसको दूर भी किया।

स्वामी जी ने भारतीय समाज का गहराई से अध्ययन किया है। उनके सामने सबसे बड़ा सवाल ''समस्या का समाधान था''। तत्कालीन युग में पश्चिमी संस्कृति की बड़ी अक्रामक चुनौती थी तथा उस माहौल में भारतीय संस्कृति में नवीन विचारधारा को लाना सबसे बड़ी चुनौती थी। दयानन्द के अनुसार भारतीय समाज की बुरी स्थिति में ब्राम्हण पुरोहित तथा प्रबुद्ध वर्ग की स्वार्थ भावना का महत्वपूर्ण योगदान था।

अतः यह कहा जा सकता है कि महर्षि दयानन्द ने युग के पुर्नजागरण की आवश्यकताओं को समझने में कोई भी भूल नहीं की थी। तथा नवजागरण एवं सुधार कार्य में स्वामी जी को कुछ कठोर कदम उठाने पड़े और कई कठोरताओं का सामना भी करना पड़ा। महर्षि जी ने नारी उद्धार के लिए बहुत काम किया। जैसे– सती प्रथा को समाप्त करने में स्वामी जी का महत्वपूर्ण योगदान है तथा उन्होंने स्त्री–पुरूष को समान अधिकार देने की भी बात कही और साथ ही साथ विधवा विवाह का भी प्रस्ताव रखा।

इन सभी बातों से पता चलता है कि उनकी सोच तात्कालिक समय से काफी आगे है। उन्होंने बार–बार बड़ी कड़ाई से उन सभी कुरीतियों, बुराइयों का खण्डन किया। उन्होंने केवल व्यक्ति सुधार पर ही नहीं, बल्कि राष्ट्र सुधार के लिए भी प्रयास किया है और इस प्रयास के लिए वे मन, वचन और कर्म से जुटे रहे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात के काठियावाड़ के मोरवी रियासत में 12 फरवरी सन् 1824 में हुआ था। इनका जन्म एक धार्मिक ब्राम्हण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम करशनजी लालजी तिवारी और माता का यशोदा बाई था। दयानन्द सरस्वती का मूल नाम मूलशंकर था और इनका प्रारंभिक जीवन बहुत ही आराम से बीता। आगे चलकर पण्डित बनने के लिए वे संस्कृत वेदशास्त्र व अन्य धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन में लग गये। 05 वर्ष की अवस्था में बालक मूलशंकर की औपचारिक विद्यारम्भ हुआ और साथ ही साथ माता–पिता के साथ परिवार के और लोगों ने अपने वंश की रीति–नीति भी सिखानी आरम्भ की। 08 वर्ष में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और 10 वर्ष तक आते–आते मूलशंकर अपने पिता की तरह शिव की पूजा करने लगे, परन्तु एक घटना ने उनकी शिव भक्ति पर ऐसा सवाल उठाया कि उनकी सारी आस्थायें समाप्त हो गई।

स्वामी विरजानंद से विद्या

स्वामी दयानंद जी कार्मिक मास की यम द्वितीया 1860 को स्वामी विरजानंद से शिक्षा प्राप्त करने मथुरा आये और सीधे उनके निवास पर पहुंचे।

गुरू जी अपने शिष्य का चयन पूर्व परीक्षा के माध्यम से करते थे। उसके बिना वे किसी को भी अपना शिष्य नहीं बनाते।

स्वामी जी के पूछने पर उन्होंने बताया कि अब तक उन्होंने सारस्वत आदि ग्रन्थ पढ़े हैं। तब स्वामी जी (विरजानंद) ने बताया कि वे सब मनुष्यकृत या मनुष्य रचित ग्रंथों को ही पढ़ा है और उनको प्रमाण नहीं माना जायेगा। उनका मानना था कि संस्कृत व्याकरण तथा वेदों के अभिप्राय को भलीभांति समझने के लिए आर्य ग्रंथों का ही आश्रय लेना चाहिए।

पाणिनी की अष्टाध्यायी तथा पतंजलिकृत महाभाष्य को वे संस्कृत व्याकरण के अध्ययन के लिए प्रयुक्त करते थे और निघण्टु और निरूक्त आदि वेदांगों को वेदों का सही अर्थ जानने के लिए।

लगभग ढाई वर्षों तक स्वामी जी ने विरजानंद जी से शिक्षा प्राप्त की। इस समय उन्होंने अष्टाध्यायी महाभाष्य तथा वेदांग का अध्ययन किया।

स्वामी जी इस बात से अवगत थे कि दयानंद जी विलक्षण प्रतिभा के धनी थे और उनहें अपना मनोरथ पूर्ण करने वाला शिष्य मिल गया था।

वैसे तो स्वामी विरजानंद दयालु स्वभाव के थे। शिष्यों के ना समझने पर वे बार–बार उनको पाठ बता दिया करते थे, परन्तु दयानंद के प्रति उनका व्यवहार कुछ अलग था।

शास्त्रार्थ

स्वामी जी ने सुधार कार्य करते हुये अनेकों शास्त्रार्थ किये। वे जहां भी जाते वहां की विद्वत मण्डली से शास्त्रार्थ किया करते थे, जिसमें अधिकतर सत्य को ग्रहण और असत्य के परित्याग पर बल देते थे। शास्त्रार्थ प्रायः संस्कृत भाषा में होते थे, बहुधा इन्हें लिखित रूप से किया जाता था।

स्वामी जी शास्त्रार्थ केवल हिन्दुओं से ही नहीं बल्कि अन्य धर्मावलम्बियों से भी होता था, चाहे वे मुस्लिम हो अथवा ईसाई।

11 जुलाई 1872 को पं0 हलधर से कानपुर में शास्त्रार्थ हुआ था। भरी सभा में स्वामी जी और पं0 हलधर के बीच वेदों में मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। जिसमें निर्णायक कानपुर के सहायक कलेक्टर श्री डब्लू थेरा जी थे। शास्त्रार्थ में स्वामी जी का पक्ष वेदानुकूल था और वे ही विजय रहे।

इस शास्त्रार्थ का परिणाम यह हुआ कि लोग अपनी मूर्तियों को गंगा में बहाने लगे। गंगा में मूर्तियां बहाने का वेग इतना तीव्र था कि निराश होकर पं0 हलधर जी ने यह विज्ञापन प्रकाशित कराया– ''बहुत ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य अपना कुल धर्म छोड़कर देवमूर्तियां गंगा में बहा देते हैं। यह अनुचित बात है'' इसीलिए यह विज्ञापन दया जाता है कि जो लोग उनके मत को स्वीकार करें, वे कृपापूर्वक उन मूर्तियां को महाराज गुरू प्रसाद शुक्ल या महाराज प्रयाग नारायण तिवारी जी के मंदिर में मूर्तियां पहुंचा दें और जो किसी कारणवश नहीं पहुंचा पाये वो हमें सूचित करें।

स्वामी जी के शास्त्रार्थ का विषय मुख्यतः मूर्ति पूजा और पौराणिक कृत्यों का निर्ममता पूर्वक खण्डन होता था। इन शास्त्रार्थों में विशेष प्रसिद्ध है –

1. प्रथम शास्त्रार्थ मई मास सन् 1867 में स्वामी जी व पं0 हीरावल्लभ शास्त्री से कर्णवास में हुआ। निरन्तर छः दिन तक शास्त्रार्थ चलता रहता है। अन्त में पं0 वल्लभ ने विनम्रतापूर्वक अपनी हार स्वीकार कर ली और स्वयं ही मूर्तियों को गंगा में प्रवाहित कर दिया और स्वामी जी की विद्वता को स्वीकार करते हुये कहा कि – ''स्वामी जी महाराज जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य और प्रमाणिक है।
2. दूसरा शास्त्रार्थ में पं0 अंगदराम शास्त्री से मूर्तिपूजा और भागवत् पुराण पर हुआ। स्वामी जी ने वेद और सत्यशास्त्रों के प्रमाणों से मूर्तिपूजा का अत्यंत बुद्धिपूर्वक खण्डन किया। अन्त में पंडित जी को पूरा संतोष हो जाने पर शालिगराम की मूर्ति सबके सामने गंगा में डाल दी।
3. सबसे प्रसिद्ध शास्त्रार्थ काशी का शास्त्रार्थ था, जिसमें स्वामी जी की कीर्ति को भूमण्डल में बिखेर दिया। स्वामी जी काशी पहुंच गये, तो मानो वहां भूकम्प आ गया हो। काशी में यह पहला अवसर था कि किसी हिन्दु ने मूर्ति पूजा का खण्डन करने का साहस किया।

सन् 1767–72 के काल में स्वामी जी ईसाई और मुसलमान लोगों के भी सम्पर्क में रहे। एक अंग्रेज पादरी टी0जी0 स्काट से स्वामी जी का अगस्त में शास्त्रार्थ हुआ था जिसका विषय पुर्नजन्म व ईश्वर था। अंत में स्काट साहब से स्वामी जी के व्यक्तित्व एवं विद्वता से अत्यंत प्रभावित हुये।

स्वामी जी मुसलमान मौलवियों से भी विचार विनिमय करते रहे थे। उन्होंने मौलवी अहमद हसन से भी पुर्नजन्म विषय पर शास्त्रार्थ किया।

उस युग में हिन्दु पंडितों विद्वानों का अन्य धर्माचार्यों से सम्पर्क ना के बराबर था। वे अपने संकीर्ण दायरे में बाहर की दुनिया से प्रायः अपरिचित थे, पर स्वामी दयानंद इसके अपवाद थे। इसी प्रकार स्वामी जी का बाबू बिहारी लाल ईसाई व बम्बई में खटेन्ड जोसेफ से धर्म विषयक् शास्त्रार्थ हुआ।

वैदिक पाठशालाओं की स्थापना

स्वामी जी प्रवचन और शास्त्रार्ाि तो करते ही थे, परन्तु उनका मानना था कि इससे केवल कुछ लोग ही लाभांवित हो रहे हैं। यदि पाठशालाओं में इसका अध्यापन हो, तो ज्यादा उत्तम रहेगा। अतः उन्होंने वैदिक पाठशालायें खोली और धर्म का प्रचार किया।

इस प्रयोजन हेतु स्वामी जी ने सर्वप्रथम फर्रूखाबाद में 1825 में पाठशाला की स्थापना की और जून 1870 में कांसगंज में भी एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की। इस पाठशाला में हर पूर्णिमा को परीक्षा होती थी और अधिक अंक पाने वाले छात्रों को पुरूस्कार दिया जाता था।

नवम्बर 1870 में स्वामी जी ने जलेसर में वैदिक पाठशाला की स्थापना की। यह पाठशाला 07 वर्ष तक चलती रही, पर जब विद्यार्थी पढ़–लिखकर भी धर्म का आचरण नहीं कर पा रहे थे, पौराणिक पाखण्ड नहीं छोड़ रहे थे, तो स्वामी जी ने विद्यालय बंद कर दिया।

इस प्रकार भ्रमण करते–करते स्वामी जी 1871 में मिर्जापुर आये और जून में वहां पाठशाला प्रारम्भ की, परन्तु उन्हीं कारणों से बंद भी कर दी गई।

स्वामी जी का धर्म प्रचार (प्रवचन)

शास्त्रार्थों के अतिरिक्त स्वामी जी प्रवचन भी दिया करते थे और उनके विषयों का मुख्य केन्द्र मूर्तिपूजा, पुर्नजन्म और ईश्वर इत्यादि हुआ करते थे।

काशी शास्त्रार्थ के बाद स्वामी जी की कीर्ति सीाी जगह फैल गई। उनके कलकत्ता आगमन की सूचना वहां के इण्डियन मिरर ने प्रकाशित करवाई थी तथा वहां के सुशिक्षित व्यक्ति भी उनसे मिलने के इच्छुक थे। [1]

''स्वामी जी की विद्वता और गम्भीर चिन्तन शक्ति से पता चलता है कि उनकी युक्तियां प्रबल तथा प्रशंसनीय है।''

पं0 महेशचन्द्र न्यायरत्न, पं0 तारानाथ, राजनारायण वसु जैसे लोग स्वामी जी के दर्शन के लिए आते और वार्तालाप से लाभ उठाते लोग उनकी वक्तव्य शक्ति को देखकर चकित होते थे। [2]

श्री केशवचन्द्र सेन को स्वामी जी पर बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने 09 जनवरी 1873 को अपने निवास पर उनका व्याख्यान करवाया।

ऋषि ने सभी व्याख्यान आर्य भाषा में दिये थे, परन्तु पूना के कुछ पण्डितों ने यह अफवाह फैला दी, कि ''स्वामी दयानंद संस्कृत अच्छी प्रकार से नहीं जानते है इसीलिए वे हिन्दी में बोलते हैं।'' इसी कारण वहां पर स्वामी जी ने पुर्नजन्म विषय पर अपना व्याख्यान संस्कृत में दिया। [3]

04 जुलाई 1875 में पूना के जय गोविन्द रानाडे के अनुरोध पर स्वामी जी पूना गये। वहां पर एक व्याख्यान माला का आयोजन किया गया। उन्होंने 15 व्याख्यान दिये जो मराठी, अंग्रेजी और हिन्दी में प्रकाशित हुये।

स्वामी जी अपने कार्य में अविरल लगे हुये थे। डुमराव से चलकर मिर्जापुर, कानपुर होते हुये इलाहाबाद पहुंचे। इलाहाबाद में म्योर कालेज के विद्यार्थी स्वामी जी से अत्यन्त प्रकाशित हुये थे। स्वामी जी ने वैदिक धर्म की विशेषताओं की जानकारी दी, जिससे कि वे आर्य विरोधियों को उचित उत्तर दे सकें।

इलाहाबाद से प्रस्थान कर स्वामी जी विभिन्न स्थलों से होते हुये पुनः काशी आये। स्वामी जी का प्रवचन क्षेत्र अब केवल हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं था, अपितु मुस्लिमों और ईसाईयों के साथ भी उनके सम्पर्क में निरंतर वृद्धि होती जा रही थी।

काशी के जज सैयद अहमद खां ने स्वामी जी से अपनी कोठी पर ''वेदों'' का व्याख्यान करवाया। वक्ता के अपूर्व उपदेश तथा कथन के उत्तम ढ़ंग से नगर के लोगों ने उनका खूब सम्मान किया। उनके सत्कार में शोभा यात्रा निकाली और स्वामी जी को हाथी पर बैठाया गया।

धर्मनिरपेक्षता

दयानंद ने भारत वर्ष के सभी सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने का क्रियात्मक प्रयत्न किया था। जनवरी 1877 ई0 को दिल्ली में महारानी विक्टोरिया के महारानी उद्घोषित होने के उपलक्ष्य में जब दरबार हुआ, तब महर्षि दयानंद ने यहां सभी धार्मिक नेताओं को इकट्ठा करके इस विषय का परामर्श करना चाहा। वे चाहते थे कि एक ऐसा मकसद ढूंढ़ा जाये, जिसमें सब समुदाय मिला दिये जाये तथा सब सुधारक एक ही स्तर में सुधार का प्रयत्न करें।

देश रियासतों में धर्म–वर्ण

भारत के कल्याण की कामना करने वाले इस महापुरूष ने तत्कालीन परिस्थितियों का गहन अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि भारत का उद्धार तभी होगा, जब रजवाड़ों का उद्धार होगा। यदि राजा सुधर जायेगा, तो प्रजा के सुधरने में कोई देरी नहीं होगी। इसी विश्वास की पूर्ति को लेकर वे 1881 में चित्तौड़गढ़ पहुंचे।

देशी रियासतों में धीरे–धीरे स्वामी जी का अच्छा प्रभाव हो गया था। उनकी अगाद्ध विद्वता से कई प्रमुख रियासतों के शासन तो उनके शिष्य बन गये थे।

स्वामी जी के उपदेशों से महाराजा के राज्य के शासन में अनेक प्रकार के कार्य हुये हैं, जैसे– राज्य में हिन्दी का प्रचार बढ़ा, पाठशालाओं में शिक्षा का प्रबंध हुआ। शाहपुराधीश को भी स्वामी कजी ने मनुस्मृति योगदर्शन तथा वैशेषिक शास्त्र पढ़ाया। शाहपुराधीश ने स्वामी जी के सत्संग का लाभ अपने राज्य के हित में प्राप्त किया।

आर्यों की दृष्टि से सत्यार्थ प्रकाश वह ग्रंथ है जो वेद का द्वार खोलता है। यह धार्मिक विश्वकोष (इनसाइक्लोपीडिया) है। जिसका पूर्वार्द्ध 01 से 10 सम्मुल्लास तक वैदिक साहित्य एवं दर्शन का और उत्तरार्द्ध 11वें से 14 सम्मुल्लास तक मजहवों का विश्वकोष है। [4] दोनों के पढ़ने से और साथ ही समझकर आत्मसात करने से पढ़ने वाले में यह भावना आ जाती है। जिसे आर्य भावना कहते हैं। इसी भावना के आ जाने से प्रत्येक आर्य या आर्य सामंजस्य पुरूष–स्त्री संसार में बड़े से बड़े कार्यों को करने के योग्य हो जाते हैं ''सत्यार्थ प्रकाश'' ने देश में और संसार के अनेक भागों में एक नई विचार क्रांति को जन्म दिया है। इसने अंधश्रद्धा के स्थान पर बुद्धिवाद और तर्क को प्रतिष्ठित किया है। मुख्यता लोगों में आत्म विश्वास को उत्पन्न किया है और साथ ही साथ भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति के प्रति अभिमान और गौरव पैदा किया।

सत्यार्थ प्रकाश का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है :–

महर्षि जी इस धर्म ग्रंथ को सम्पूर्ण धर्म ग्रंथ भी कहा जाता है क्योंकि इसमें धर्म के दोनों प्रयोजनी का (अभ्युदय और निःश्रेयस) प्रतिपादन किया है।

सनातन वैदिक धर्म के अनुसार पुर्नजन्म, परलोक, जीवात्मा आदि की सत्ता है और मनुष्य को भौतिक व सांसारिक अभ्युदय के साथ–साथ निःश्रेयस की प्राप्ति की भी आवश्यकता होती है। [5] इस बात को ध्यान में रखकर स्वामी दयानंद सरस्वती ने ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति के स्वरूप का विस्तृत रूप से प्रतिपादन किया है और साथ ही मोक्ष प्राप्ति के उपायों पर भी ध्यान आर्कषित किया है।

मानव जाति के उन्नति और कल्याण के लिए सदाचरण की आवश्यकता, धार्मिक अनुष्ठान, कर्तव्य पालन की तत्परता सम्पादित करना सभी के लिए आवश्यक है। इस ग्रंथ में मनुष्यों का अपने माता–पिता, भाई–बहन, शिक्षक–शिष्य के संबंध के प्रति कर्तव्य। सामाजिक जीवन के व्यक्तिगत सदाचरण जो कि न्यायसंगत एवं धर्मानुकूल हो, उन पर विशुद्ध रूप से प्रकाश डाला है। पुत्र और गुरू शिष्य में संबंध और छुआछूत व्यवस्था आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला है। राज्य की शासन व्यवस्था, न्याय व्यवस्था व शासन पद्धति किस प्रकार की हो। इन सभी बातों के मूल सिद्धांतों का ''सत्यार्थ प्रकाश'' में निरूपण किया गया है।

विभिन्न मत जैसे बौद्ध, जैन, क्रिश्चियन और इस्लाम आदि मतों की विवेचना, समीक्षा या खण्डन स्वामी जी ने इस ग्रंथ में केवल इसीलिए किया, ताकि सत्यासत्य का निर्णय हो सके।

1. प्रथम सम्मुल्लास में ईश्वर के नामों की व्याख्या
2. द्वितीय सम्मुल्लास में संतानों की शिक्षा
3. तृतीय सम्मुल्लास में ब्रम्हचर्य, पठन–पाठन व्यवस्था
4. चतुर्थ सम्मुल्लास में विवाह और ग्रहाश्रम का व्यवहार
5. पंचम सम्मुल्लास में वानप्रस्थ और सन्याश्रम की निधि
6. षष्ठम सम्मुल्लास में राजधर्म
7. सप्तम सम्मुल्लास में वेदेश्वर विषय
8. अष्टम सम्मुल्लास में जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय
9. नवम सम्मुल्लास में विद्या–अविद्या, बंध ओर मोक्ष की व्याख्या।
10. दशम सम्मुल्लास में आचार, अनाचार और भाक्ष्याभक्ष्य विषय।
11. एकादश सम्मुल्लास में विभिन्न मत मतान्तर का खण्डन मण्डन विषय।
12. द्वादस सम्मुल्लास में चारवाक, बौद्ध और जैनमत का विषय।
13. त्रयोदश सम्मुल्लास में ईसाई मत का विषय।
14. चौहदवें सम्मुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय।

स्वामी जी का इस ग्रंथ को बनाने का मुख्य कारण था –

- ''इस ग्रंथ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्यासत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसे मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहा जा सकता जो सत्य के स्थान पर असत्य और असत्य के स्थान पर सत्य का प्रकाश किया जाये, किन्तु जो पदार्थ जैसा ही उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहलाता है।
- जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और विरोधी के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इसीलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता है।
- जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहलाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानि मात्र करता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

अतः पुराणों ग्रंथों बाइविल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से ना देखकर उनसे गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के एिल प्रयत्न करता हूँ वैसा सबको करना चाहिए।

अतः मैं अपने परिश्रम को सफल समझता हूं अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने रखता हूं। इसको देख कर मेरे श्रम को सफल करें। किसी भी प्रकार का पक्षपात ना करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा व सबका मुख्य कर्तव्य काम है। सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करें।

सारांश

स्वामी दयानन्द सरस्वती आधुनिक विश्व के प्रथम विचारक हैं, जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में सबके लिए अनिवार्य व निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा का सिद्धान्त रखा, उनके एक प्रमुख शिष्य स्वामी दर्शनानंद जी ने भारत में सबसे पहले निःशुल्क शिक्षा प्रणाली का प्रयोग किया।

स्वामी जी ने ''सत्यार्थ प्रकाश'' में बताया कि ''बालक के जन्म के पश्चात् संगंधित जल से स्नान कराके नाड़ी छेदन करके सुगन्धियुक्त घृतादि का होम, जिससे बालक और स्त्री का शरीर अरोग्य व पुष्ट हो जाये। नवाजात शिशु को कम से कम छः दिन तक दूध पिलाना चाहिए तथा माता के दूध में उत्तम गुण आ जाये इसीलिए माता को उत्तम पदार्थ खिलाने चाहिए। प्रसवकाल में प्रसूता दुर्बल हो जाती है। अतः प्रसूता को शिशु के जन्म के पश्चात् ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जहां कि वायु शुद्ध हो एवं सूर्य का प्रकाश हो।

सन्दर्भ

1. आर्य समाज का इतिहास 30
2. युग प्रवर्तक भाग, द्वितीय संस्करण पं0 देवेन्द्रनाथ पृष्ठ–348
3. महर्षि दयानंद और प्राचीन परम्परायें, सरोजवाला, पृ0–06
4. राजेन्द्र जिज्ञासु, सत्यार्थ प्रकाश क्या और क्यों, पृ. 47
5. यथार्थ वर्णव्यवस्था और दलितोद्वार में महर्षि दयानंद का योगदान